अध्याय - 5

आधुनिक काव्य भाषा एवं स्त्री जागरण की भाषा शैली

अध्याय–पाँच

5.0 आधुनिक काव्य भाषा एवं स्त्री जागरण की भाषा शैली

5.1. हिंदी नवजागरण की भाषा

आधुनिक हिंदी माने खडीबोली, नवजागरण की भाषा भी है। उसका विकास उस दौर के साथ हुआ है, जिस दौर में राष्ट्रीय जागरण हो रहा था। गद्य का निर्माण और जन भाषा का प्रचार आधुनिकता के ज़माने में बहुत ज़रूरी था। भाषा को स्वतंत्र और परिपक्व बनाने केलिए हर तरह का प्रयास हुआ। प्रगतिवादी समय में भाषा को सबसे अधिक मैदानीपन स्वायत्त हुआ।

शिव शिव शिव शिव ....

शुभ शुभ शुभ शुभ ...

मंगल मंगल ....

शांति शांति ....

धत् रहने भी दो!

लटक रही है तलवार रात दिन इस गदन पर

– बेकारी की

– लाचारी की

– बीमारी की

चैन नहीं आराम नहीं है

सपने में भी सुख–सुविधा का नाम नहीं है

तन विषण्ण, मन चिर अशांत है

पल–पल छन–छन भयाक्रांत है

कैसे लिखूँ 'शांति' पर कविता?[1]

शब्दों व पंक्तियों में आवृत्तियाँ जागरणमूलक कविता की अनिवार्यता थी। जनजुबान में उन्हें प्रवृत्त रखने के लिए कवियों ने लयात्मकता के साथ तालबद्ध कविताएँ लिखीं। भारतीय स्वतंत्रता के परिप्रेक्ष्य में नागार्जुन के यहाँ इस तरह की कई कविताएँ मिलती हैं।

आगे स्वतंत्रता के बाद भाषिक एवं विषय की दृष्टि से कविगण सतर्क बन गए। काव्य कौशल को नए ढंग में प्रस्तुत करने के लिए उन्होंने काव्यरूपक सौन्दर्य के साथ रूबरू होकर शाब्दिक विद्रोह किया –

''मैं विद्रोह करूँगा

उन सारे शब्दों के खिलाफ

जिनसे गढे गए तुम्हारे धर्मशास्त्र, और

झूठ भरे इतिहास

मैं विद्रोह करूँगा

चुप नहीं रहूँगा।''[2]

आधुनिक जागरण के समय में एक दृष्टि से गद्य, भाषा का समानार्थी शब्द बन गया। तब तक जो भाषा साहित्यिक रूप विद्यमान था, वह ज़्यादातर कविता के

---

1. सं. मिश्र शोभाकांत, नागार्जुन : चुनी हुई रचनाएँ, पृ. 84
2. सुदेश तनवर, चुप नहीं रहूँगा, वसुधा–58, पृ. 139

रूप में मिलता था। कविता का विधात्मक रूप सृजनात्मक एवं प्रवाहमान है। कविता की विधात्मक विशेषताओं के कारण उस पर भी रूपक गढ़ा जाता है। काव्य जगत के मध्यकालीन परिसर में मीरा के अलावा अधिकाधिक कवि थे। भाषा में कविता की अभिव्यक्ति, सामाजिक, सांस्कृतिक और भक्ति का माध्यम बन जाती थी। मीरा ने इनके बीच में अपना स्पष्ट प्रतिनिधित्व बनाए रखा। भक्ति संवेदना एवं काव्य रस संरचना में वह किसी के पीछे नहीं थी।

5.2. कविता सौन्दर्य की अभिव्यक्ति

कविता का यह सौन्दर्य रहा है कि वह मनुष्य जाति की अभिन्न अभिव्यक्ति है। उसकी संवेदना की सदैव वाहिका है। कविता का जन्म, विकास, परंपरा और यात्रा में मनुष्य की संवेदनाओं का सहज प्रवाह है। यह मानना पडता है कि प्रयत्न जटिल कार्यों की दुनिया में इसका अपवाद भी संभव है। परंतु काव्य रचना को पूरा प्रयत्न सिद्ध मानना, किसी की बुद्धि में समाहित होनेवाली बात नहीं है। कहने का मतलब यह भी है कि काव्य भाषा इंसान की संवेदना की सहज भाषा है। छंद, अलंकार, काव्य तत्व तथा आडंबरपूर्ण शब्द सम्मेलन हमेशा उसका साथ रहा है। समयानुसार नए प्रतिमान गढ़ने का काव्य प्रयास भी कम नहीं था।

कविता को स्त्री रूपक से अभिहित करने की परंपरागत धारणा के कई कारण हैं। कविता की प्रवाहमयता, सौन्दर्य, अलंकार, संवेदनात्मक सघनता और आस्वादन की तन्मयता आदि इसके कारण हो सकते हैं, जो परंपरागत ढंग में स्त्री गुणों में गिने जाते हैं। विमर्श के प्रचार से स्त्री रूपों पर जिस तरह

प्रश्न चिह्न लगाए गए उसी तरह काव्य गुणों पर भी प्रश्न उठाए गए। कविता के प्रतिमान भी कालानुसार बदल गए। कविता की भाषा पर व्यापक शोध चिंतन उभर आया। स्त्री भाषा शास्त्र की कसौटियों पर काव्य भाषा की जाँच होने लगी।

5.3. कालिमा की भाषा

''भाषा की लहरों में जीवन की हलचल हैं
ध्वनि में क्रिया भरी है और क्रिया में बल है।''[1]

हिंदी में यथार्थवादी कविता प्रगतिवादी समय से सामने आई। निराला में यथार्थ प्रेरित काव्याभिव्यक्ति मिलती है। उनकी तोडती पत्थर, विधवा, भिक्षुक जैसी कविताएँ यथार्थ पर प्रेरित थीं। पर छायावाद की समग्रता में काल्पनिक तथा अतिवर्णित कविताएँ भी हैं, इसलिए यथार्थवादी समय से लेकर कविदृष्टि व कवितादृष्टि में भाषिक परिवर्तन चिह्नित करना आसान है।

बीसवीं सती के अंतिम दशकों तक आती कविता यथार्थ और अनुभूत यथार्थ पर केन्द्रित हो गई। इसी समय में गद्य विधाओं में सभी प्रकार के लेखक–लेखिकाओं की उपस्थिति एवं दखल हो रहा था। इस कारण से कविता ने भी हाशिए के जीवों पर आवाज़ दर्ज की है। यह भी महत्वपूर्ण बात है कि समकालीन कविता, स्त्री के सौंदर्य पर ही नहीं, उसके दूसरे दर्जे में जीवित लिंगजीवि पर अनुभवों पर संवेदना भी ज़ाहिर करती है।

---

1. त्रिलोचन, 'भाषा' की लहरें, त्रिलोचन संचयिता, पृ. 55

वह लडकी

वह काली लडकी

जो करती है सारे उज्ज्वल काम

गुज़रती है जब भी गलियों से

काली नज़र से घूरती है उन्हें

बाहर झांकता है उसका काला तिल

कितनी सुंदर है वह लडकी[1]

काली लडकी, अछूत थी, अस्पृश्य थी और समाज में अन्या थी। समकालीन कवि उसमें सुन्दरता देखता है, और वह अपनी दृष्टि विस्तार में कविता भर को नया सौन्दर्य प्रदान करता है। इस कविता के प्रसंग में यह भी बडी बात है कि इसमें कवि लिंगसंवेदित है।

यह मानना पड़ता है कि साहित्य हमेशा लिंगबोध से निर्धारित नहीं होता। पर यह भी स्वीकारना पडेगा कि वह हमेशा लिंग बोध के परे नहीं होता। बोध या अबोध में लिंग भेद की विविध झोकियाँ आती जाती हैं, जो लिंग भेद से त्रस्त सामाजिक व्याख्या में सोचने योग्य बन जाता है। सकारात्मक रूप में भी लिंग चिंतन उभर कर आ सकता है।

5.4. स्त्रीपक्षीय कविता की भाषा

कविता में स्त्री पक्षीय जाँच आसान नहीं है। स्त्री संबंधी कविताएँ चाहे उसे पुरुष ने लिखा हो या स्त्री ने, सामान्य दृष्टि में स्त्री पक्षीय लग सकती हैं।

---

1. विजय राठौर, काली लडकी काली, पृ. 58

मगर लिंग भेद के मारी दुनियादारी में इनपर सूक्ष्म विवेचन ज़रूरी है। पर इन कविताओं का सामाजिक–सांस्कृतिक विनिमय इसलिए ज़रूरी है कि उससे कविता के साथ भाषा की पक्षधरता भी सामने आती है, जो आगे की काव्यभाषा निर्माण के लिए मार्गदर्शक बन जाती है। आम दृष्टि में कविता विषयों में जितनी स्त्री पक्षीयता सामने आई है, उतनी उसकी भाषा भी स्त्री पक्षीय होती आई है। परंपरागत ढंग में भाषा पुरुष निर्मित वस्तु है, जिसे बदलने, गढ़ने और ठीक करने में समय लगता है।

आदिवासी प्रतिनिधि कवयित्री निर्मला पुतुल ने आदिवासी की भाषा पर काव्य दृष्टि डालनेवाली नागरिक मानसिकता पर कविता की है। उनके अभिप्राय में आदिवासी की जीवनशैली और भाषा सब अस्पृश्य है। इस विवेचन की मानसिकता भारतीय सामाजिकता की जातीय अशांति व्यक्त करनेवाली है –

''उनका तर्क है कि
सभ्य होने के लिए ज़रूरी है उनकी भाषा
सीखना
उनकी तरर बोलना बतियाना
उठना–बैठना
ज़रूरी है सभ्य होने के लिए उनकी तरह
पहनावा ओढावा
मेरा सब कुछ अप्रिय है उनकी नज़र में।''[1]

---

1. निर्मला पुतुल, मेरा सबकुछ अप्रिय है उनकी नज़र में, हंस, सितंबर 2003, पृ. 51

5.5. खडीबोली के बदलते रूप-काव्य में

बोधिसत्व की एक कविता 'कमलादासी की कविता' पुराने ज़माने की कवयित्री मीरा के मिथक को उठाती है। यहाँ पर कवि मीरा को राणी नहीं मानता है। स्त्री की एकांतता को कवि पहचानता है और मीरा, कवि के मतानुसार तत्कालीन माहौल का शिकार है।

''मैं मीरा नहीं
दासी हूँ
कोई मेरा राणा नहीं था भी
न विधवा कुआँरी
न कहीं से कोई ज़हर का प्याला
न कोई गिरिधर गोपाल।[1]

मध्यकालीन लोकभाषा से लेकर आधुनिक समय में प्रतिष्ठित मानक भाषा तक के रूप में हुई काव्य यात्रा के विभिन्न पडावों में, कविता की भाषा शैली कभी कभी उसके विषय को गढ़ने में इस्तेमाल हुई है। आधुनिकता के आरंभिक समय में खड़ीबोली का काव्यभाषा रूप सामने आया। भारतेंदु युग की कविता में परंपरा की कड़ी विद्यमान थी। आगे के ज़माने में भाषा के तौर पर, कविता और गद्य में खडीबोली प्रतिष्ठित एवं स्थापित होने का प्रयास कर रही थी।

द्विवेदी युग की खड़ीबोली कविता का उदीयमान युग ही रहा था। विषय सजता एवं वैचारिकता के बल पर कवियों ने नवीन संकल्पनाएँ भी लिखी

---

1. बोधिसत्व, नया ज्ञानोदय, जनवरी 2004, पृ. 9

थीं। इतिवृत्तात्मक भाषाई रूप द्विवेदीयुगीन कविता में भी देखा जा सकता है। मैथिलीशरण गुप्त, रामधारीसिंह दिनकर आदि ने पौराणिक स्त्री पात्रों के पुनर्वाचन का भरसक प्रयास किया और काव्य में उपेक्षिताओं को केन्द्रीय स्तर पर साहित्य में स्थान मिला। पौराणिक कथाओं में, जहाँ तक स्त्री जागरण मूलक प्रतिनिधित्व संभव था, उसका नींवाधार प्रयास इस युग के पद्य में देखने को मिलता है। राष्ट्रवादी कविता की यह काव्य परंपरा, न्यूनाधिक रूप में बीसवीं शती के पाँचवें दशक तक फैली मिलती है।

द्विवेदीयुगीन कवि मैथिलीशरण गुप्त की कविता से छायावादी कविता तक ही विषय व भाषा में परिवर्तन दिखायमान है। शब्दावली तथा वर्णन में भावगत यात्रा मौजूद है। स्त्रियों पर लिखते हुए मैथिलीशरण गुप्त ने 'दीनकुल बालाएँ असहाय' जैसी पंक्ति लिखी है तो बाद के कवि ने 'वह तोडती पत्थर' / 'देखा मैं ने इलाहाबाद के पथ पर' लिखा था। इस तरह की कविता लेखन केलिए छायावाद तक आते आते कवियों ने छंदबंधन के साथ परंपरा सिद्ध विषय विधान को भी खोल छोडा था।

छायावादी कविता छंदबंधन खोल कर अवतरित हुई थी। पर भाषा, शब्द, शैली आदि में वह स्त्री जागरण के विशेष स्तर पर नहीं चल रही थी। उसके चिंतन में विधवाएँ, पत्थर तोड़नेवाली मज़दूरिन आदि के साथ संध्या सुंदरी तथा श्रद्धा तक की महान स्त्रियों का सामंजस्य शामिल है। छायावादी कविता कभी कभी काल्पनिकता की दुनिया में भी विचरण करती है। काव्य विषयों में एक प्रकार की आज़ादी नज़र आती है। आज़ादी या खुद ब खुद

सोचने, विचरण करने तथा सपने देखने की पद्धति जागरण की दहेली हो सकती है। पंत, निराला की परवर्ती दौर की कविताएँ और महादेवी का गद्य इसका परिप्रेक्ष्य की ठीक तरह से पहचान कराती हैं।

महत्वपूर्ण ऐतिहासिक पडाव है कि छायावादी कविता में स्त्रीत्व के विविध रूप सामने आए। कवयित्री के रूप में महादेवी वर्मा ने स्त्री संबंधी कविताएँ लिखीं। निराला की कालजयी कविताएँ, स्त्री के पौराणिक पुनर्वाचन के रूप में 'कामायनी' आदि उदाहरण यहाँ पर स्मरणीय हैं।

छायावादी काव्यभाषा का द्वंद्व यह है कि वह एक तरफ से काल्पनिक रही तो दूसरी तरफ जागरण मूलक थी। 'जागो फिर एक बार' 'बादल राग' आदि की काव्य भाषा आज भी जनमानस को आन्दोलित करती है। ऐसी काव्य भाषा ने प्रगतिवादी जन काव्य भाषा की भी नींव डाल रखी थी। काव्य भाषा में अलंकार, छंद एवं आडंबरहीन हो जाना, उसकी प्रेरणाओं व विषयों को नवगठित करने का कार्य था। प्रगतिशील काल चेतना के लिए यह बहुत ज़रूरी कदम था, जिसका निर्माण छायावादी कवियों ने शुरु किया था।

छायावाद हो या प्रगति–प्रयोग, सामान्य एवं विशेष दृष्टि से इन काव्य समय के कवियों की संख्या ज्यादा रही, छिटपुट कवयित्रियाँ ही प्रशस्त रहीं। इसके सामाजिक एवं साहित्यिक कारण थे। इस समय तक होते होते स्त्रियों को साहित्यिक क्षेत्र में स्वागत करने का माहौल रूपायित हो रहा था। पर यह बताना कठिन है कि तब भी स्त्रियों की बातों को मानने और उनकी भाषा को हैसियत देने की मानसिकता, पुंसवादी समाज को स्वायत्त नहीं थी। साहित्यिक

दृष्टि से नारी जागरण के दिवस आगे आ रहे थे। रचनाएँ सामाजिक संरचना को नए ढंग से पुनर्गठित करने का आह्वान कर रही थी। इस संदर्भ में कवियों का श्रेय है कि वे समाज व संस्कृति में अनिवार्य सामाजिक उन्नति और स्त्री उत्कर्ष की बातों को बराबर प्रस्तुत करते थे। नागार्जुन की कविताएँ इसके उदाहरण हैं।

छंदबंधन खोलने से लेकर सपाट बयानी तक की प्रवृत्तियाँ, नव भाषा गठन के लिए सहायक है। इससे भाषा के उपयोग प्रयोग में स्वतंत्रता को बोध उत्पन्न होता है। पूरे संदर्भ को धूमिल ने यों व्यक्त किया है –

''छायावाद के कवि शब्दों को तोडकर रखते थे
प्रगतिवाद के कवि शब्दों को टटोलकर रखते थे
नई कविता के कवि शब्दों को गोयकर रखते थे
सन्साठक खोलकर बाद के कवि शब्दों को खोलकर रखते थे।''[1]

5.6. समकालीन स्त्री वैचारिकी और कविता भाषा

''दुनिया के तमाम देशों के तमाम लोगों तक
पहूँचेगी कविता
अलग अलग रास्तों से होकर
अलग अलग भेस में
और बताएगी उस सबसे सुंदर

---

1. धूमिल, कल सुनना मुझे, पृ. 36

दुनिया के बारे में

जो भली हमने देखी नहीं है।''[1]

यह सही है कि बीसवीं शती के अंतिम चरण तक स्त्री वैचारिकी और स्त्री भाषा पर भारतीय परिप्रेक्ष्य में ठोस निर्णय नहीं हो पा रहा था। स्त्री लेखन को ही खारिज करनेवाले लोग आज भी हैं। अकादमिक और सैद्धांतिक स्तर पर स्त्री भाषा गठन पर पाश्चात्य चिंतकों की राय से प्रभावित होकर भारतीय समाजों में भी अब सकारात्मक सोच स्वीकृत है।

पाश्चात्य वैचारिकों में हेलन सिसू एवं लूस इरिगेरे ने भाषा को स्त्री पक्ष में ढालने का ऐतिहासिक प्रस्ताव रखा। हिंदी जैसी तीसरी दुनिया की भाषा में स्त्री पक्षीय चिंतन के अभाव की दिक्कतें बहुत हैं। बताया जाता है स्त्री विरोधी भाषा–शब्दों का उपयोग कला साहित्य में बेबाक होता है, जो समाज को बिगाड देता है। हालावादी कविता के स्त्री रूपकों को यहाँ पर उदाहरण के तौर पर लिया जा सकता है।

धीरे–धीरे लिंग संवेदित भाषा और शब्दों के उपयोग में साहित्यिक जगत् जागरूकता दिखाता है।[2] वह स्त्रीत्व के अपमान करनेवाले शब्द प्रयोग या प्रकरणों से परहेज रहता है। शंका नहीं कि परंपरागत शाब्दिक अर्थभेद और लिंग भेद की सूचना ने औरत व आदमी का फासला बढ़ा दिया है। समकालीन कविता इस बात की पुष्टि करती है –

---

1. कात्यायनी, यह वापसी महज भुगतने के लिए नहीं, इस पौरुषपूर्ण समय में, पृ. 130
2. अक्षयकुमार दुबे, पटरी से उतरी हुई औरतों का यूटोपिया, राष्ट्रवाद का प्रति–आख्यान, प्रतिमान समय, पंजाब संस्कृति, पृ. 407

शब्दों की सभ्यता ने
बढ़ाई है ओंठों के बीच
जितनी निकटता
उतनी ही
बढ़ाई है दूरी
छाती के बीच [1]

अर्थात् भाषा व शब्दों के उपयोग–प्रयोग में भी लिंगभेद का संकेतार्थ ठहरता है। स्त्री व पुरुष के बीच का फासला पुंस भाषा प्रकरणों से बढता भी है।

बीसवीं शती के अंतिम दशकों तक आते आते स्त्री विमर्श का दौर स्वीकृत हुआ। गद्य के समान पद्य में भी स्त्रियों की देन बहुत बढ़ी। समकालीन समय की कवयित्रियों की लंबी कतार मिलती है और कविताओं की संख्या अनगिनत बढ़ती जा रही है। सामाजिकता के विकास चरणों में स्त्री भाषा पर चर्चा हुई थी। विमर्श के रूप में स्त्री चिंतन और उसका अभिव्यक्ति रूप, भाषा पर सभी छोरों से प्रभाव डालने लगा था। पर रूढ़ियों की पितृदायकता एवं पुरुष महिमा से लथपथ भाषा को एक झटके में स्त्रीपक्षीय बनाने की दिक्कतें एवं व्यावहारिक समस्याएँ थीं। देखने पर यह मालूम होता है कि भाषा के पुनरीक्षण के सोचविचार से स्त्री विमर्श लाभन्वित हुआ है। कात्यायनी की काव्य पुस्तक का शीर्षक है ''इस पौरुषपूर्ण समय में।'' हिंदी जैसी भाषा में इस तरह का शीर्षक चयन ही स्त्री जागरण के समय की सूचना देता है।

---

1. पुष्पिता, खेल, दस्तावेज, अक्तूबर–दिसंबर, 2002, पृ. 61

5.7. जागरणमूलक भाषा का प्रयास

''यह तो बाज़ार है जिसे अपने विज्ञान के लिए
विश्व सुंदरी की भी ज़रूरत है
वरना विश्व सुन्दरी की भी क्या ज़रूरत है
विज्ञापन सुंदरी द्वारा प्रस्तुत करने योग्य जीवन में
कितने अनुपयोगी और कितने अदर्शनीय हैं हम
हमारे अप्रस्तुत जीवन में हर वक्त प्रस्तुत है
गोबर थापती, उपले पाथती गरीब गबरू औरतें
उत्पीडित कमाऊ बच्चों की अस्थायी नींद और स्थायी बीमारियाँ
जो सफल और सभ्य समाज में
साबुन पाउडर, क्रीम और हिंसक खिलौने में बदल जाती है
जिन्हें पुरानी स्त्री के मैल से पैदा नयी स्त्रियाँ बेचती हैं
क्योंकि नयी स्त्रियाँ ही आर्थिक स्त्रियाँ मान ली गयी हैं
इनका विवेक प्रायोजित विवेक है।''[1]

रोचक है कि हिंदी और खडीबोली, स्त्रीलिंग वाचक शब्द हैं। खडीबोली का खडी हो जाने का रूपक इस भाषार्थ को चरितार्थ करता है। भाषा की प्रगति एवं निरंतर विकास साहित्य के माध्यम से ही संभव हुआ। प्रारंभ से ही पत्र–पत्रिकाओं ने भाषाई उन्नमन को लक्ष्य बनाया था। शब्द निर्माण, शैली मिश्रण, शब्द ग्रहण तथा नव शब्द गठन के माध्यम से शब्दावली को संपन्न करने के प्रयास के साथ–साथ देशी–विदेशी रचनाओं से प्रेरणा प्राप्त करके खडीबोली हिंदी का साहित्य, सुगढ और सुंदर रूप में अवतरित होता था।

---

1. लीलाधर जगूडी, विज्ञापन सुंदरी, ईश्वर की अध्यक्षता में, पृ. 20

इस संदर्भ में देखा जाए तो जागरणमूलक भाषा साहित्यिक विकास के लिए अनिवार्य था। भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से हिंदी, आधुनिक समय की भाषा है। भारतीय प्रसंग में वह जागरणमूलक भाषा भी रही। स्वतंत्रता संग्राम की पृष्ठभूमि को कायम करनेवाली जुबान के रूप में उसका जनभाषा या संपर्क भाषा रूप में महत्वपूर्ण है। इन्हीं कारणों के बल पर स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद वह राजभाषा घोषित हुई। नियमों के बल पर उसको प्रशासनिक स्तर सुनिश्चित किया गया।

एक स्वतंत्र व स्वायत्त भाषा के रूप में हिंदी का विकास महत्वपूर्ण और ऐतिहासिक रहा था। सामान्य जनता की आवाज़ दर्ज करने की क्षमता भी उसने समयानुसार हासिल की थी। पर इसका अर्थ यह नहीं कि एक जागृत भाषा के रूप में अब भी वह पूर्ण है। हाशिए के प्रतिनिधित्वों को साहित्य के केन्द्र में लाने की कोशिश ने हिंदी भाषा को भी वह भाषाई भंगिमा प्रदान की थी, जिससे विविध उपेक्षित अस्मिताएँ सामने आई और उनकी वाणी की नोकचूक से भाषा लाभान्वित हुई।

आदिवासी प्रतिनिधि निर्मला पुतुल को यहाँ पर उदाहरण के रूप में लिया जा सकता है –

तुम्हारे पास शब्द हैं, तर्क हैं, बुद्धि हैं
पूरी की पूरी व्यवस्था है तुम्हारे हाथों
तुम सत्य को झुठला सकते हो
बार बार बोल कर

कर सकते हो एक वाक्य में
सब कुछ खारिज
आँखों देखी को गलत साबित कर सकते हो तुम
जानती हूँ मैं
पर मत भूलो!
अभी पूरी तरह खत्म नहीं हुए
सच को सच और झूठ को
पूरी ताकत से झूठ बोलनेवाले लोग।[1]

यहाँ पर अन्य कहे जानेवाले लोगों की मानक भाषा, स्तरीय सच्चाई आदि पर कवयित्री प्रश्न करती है और उनकी असभ्यता और कपटता का पर्दाफाश करती है।

5.8. भाषा निर्मिति की प्रक्रिया

''एक साजिश स्त्री जाए
बारूदी सुरंग बिछाकर
उडा दी जाए
चुप्पी की दुनिया।''[2]

भाषा को लेकर यह मान्यता स्वीकृत है कि वह मानव निर्मित है। भाषा विकास की विधियाँ स्त्री–औरत–आदिवासी पर नज़र रखनेवाली नहीं थीं। यहाँ तक इन खेमों में भी प्रचलित जुबानी भाषा में स्त्री विरोधी रुख और उक्तियाँ

---

1. निर्मला पुतुल, अपने घर की तलाश में, पृ. 111
2. कात्यायनी, ऐसा किया जाए कि, शख अंधेरे की बारिश में, पृ. 43

सम्मिलित थीं। भले ही भारतेंदु तथा द्विवेदी में स्त्री की अलग भाषा की चर्चा की कोई राह नहीं थी, परवर्ती दौर में भाषा धीरे–धीरे स्त्री पक्षीय होती हुई आगे बढ़ी। काल्पनिक समय में ही विधवा या पत्थर तोडनेवाली स्त्रियों पर कविताएँ लिखी गई, इसे इस भाषाई परिवर्तन की शुरुआत मानी जा सकती है। नारी को श्रद्धा, माता और अबला घोषित काव्याचरणों से भिन्न होकर औरतों को यथार्थवादी निगाहों से देखने की वृत्ति तब से चालू हुई जो प्रगति–प्रयोग तथा नई–समकालीन काव्य समय में अग्रसर हुई। माधुर्य प्रधान भाषा शब्दों में स्त्री वर्णन, नखशिख वर्णन आदि की परंपरा यहाँ पर आकर बुद्धि, क्षमता, वैचारिकता, अस्मिता, अस्तित्व, चेतना आदि से परिपोषित किया गया। समकालीन समय में स्त्री भाषा की वैचारिकी सामने आई, तो इस ओर बृहद् प्रयास देखने को मिलता है। नारी सम्मान को ठेस पहुँचाने शब्द प्रयोग की समकालीन संदर्भ में आलोचना और आपत्ति दर्ज की जाती है।

5.9. स्त्री भाषा निर्माण

''मैं लिख रही हूँ
क्योंकि मेरे लिए लिखते
समय की समस्त संवेदनहीन
क्रूर साजिशों के मध्य भी
प्रमाण है मेरे जिन्दा होने का
लिखना एक हथियार है
आत्महत्या के विरुद्ध

क्योंकि

मैं अभी मरना नहीं चाहती।''[1]

सामान्य दृष्टि से शब्दावली में जागरूकता स्त्री पक्षीय या स्त्री जागरण के संदर्भ में रुचिकर लगता है। सहानुभूति और दया के शब्दों का धीरे–धीरे हट जाना इस प्रसंग में महत्वपूर्ण है। पुरुष प्रधान समाज की भाषा में उस संबंधी पोषक शब्दों का व्यवहार होता है। पुराने समय से लेकर काव्य सौन्दर्य का मानक कवियों या समालोचकों ने इसी दृष्टि में तैयार किया है। उदाहरण के लिए, भारतेंदु–द्विवेदी युगीन कविता में दुष्चरिणियों व बदचलन औरतों की निंदा है। सबल नायिका स्वरूप में पुराणों के स्त्री पात्रों का अनुकरण इनमें प्रस्तुत है। देवी, माँ तथा दुर्गा के रूप में स्त्री का प्रत्यक्ष रूप, इने गिने संदर्भों पर सामने आए थे, मगर इनकी संख्या गौण है। सामान्य अर्थों में स्त्रीत्व का वर्णन, गृहस्थिन या समाज कल्याणी के रूप में किया गया था। नारी जागरण के आरंभिक समय में नारी उन्नमन द्वारा समाज उन्नमन की बात का स्वागत किया जाता था। पर उस समय में भी सहचरिणी या प्रेयसी के रूप में स्त्री की इयत्ता अलग नहीं थी। जागृत होने का समय व काल विलंब काफी लंबा रहा था। शती के परवर्ती दशकों में इसमें ज़रूर प्रगति दिखायमान है।

स्त्री भाषा संरचना पर आज भी लोगों को शंका है। भाषा समाज निर्मित होने के कारण उसमें परिवर्तन की दिशा तेज़ नहीं है। उपयोक्ता–प्रयोक्ताओं के बल पर भाषा जीवित है। लेखन के क्षेत्र में भी स्त्रियों की संख्या बढ़ने से भाषा में सम्मिलित पुंस प्रवृत्तियाँ कम होती जाने की संभावना है।

---

1. मोनोलिषा, वजह, आजकल, अक्टूबर 2003, पृ. 27

भाषा एवं कविता को हाशिए की चेतना के पक्ष में करने के लिए आधुनिक समय से जो साहित्यिक प्रवृत्तियाँ मौजूद रही थीं, उनमें गद्य–पद्य का समन्वय महत्वपूर्ण है।

'स्त्री मेरे भीतर' संकलन लिखनेवाले कवि पवन करण की कविताएँ गद्यमय हैं। लंबे वाक्यों में संवाद मिश्रित शैली में लिखी गई कई कविताएँ संकलन में हैं। बदलती स्त्री चेतना के प्रसंग में यह संकलन महत्वपूर्ण सामने आता है। माँ, प्रेयसी, प्रेमिका, पत्नी, बेटी, कामकाजी स्त्री जैसी विविध स्त्री भूमिकाओं पर इस संकलन में कविताएँ मिलती हैं। संकलन की खासियत यह भी है कि इसमें 'प्यार में डूबी हुई माँ' तथा 'मौसरी बहनें' जैसी कविताएँ हैं, जो अनन्य संवेदना जाहिर करती हैं। 'प्यार में डूबी हुई माँ' में अपनी माँ के नए प्रेम पर बोलती बेटी का बयान है। ऐसे विषय व स्थितिभेद का वर्णन हिंदी के काव्येतिहास में इसके पहले कभी नहीं हुआ था।

इस कविता का महत्व यह है कि, माँ को खुश देखनेवाली लड़की खुद को खुशनसवीब मानती है।

> ''मैं दुनिया की सबसे खुशनसीब लडकी हूँ
> वो इसलिए कि मेरी माँ इन दिनों
> अपने पुरुष मित्र के प्यार में डूबी हुई है।
> और मैं उन्हें आपस में एक दूसरे को
> चुपके चुपके प्रेम करते हुए देखती हूँ।''[1]

---

1. पवन करण, प्यार में डूबी हुई माँ, मेरे भीतर, पृ. 91

'मौसेरी बहनें' में आपसी निभाव पर किलकारियाँ भरनेवाली दो बहिनों पर केन्द्रित है, जिसमें लडकियों के प्यार को कवि कारणभूत मानता है।

इन कविताओं की भाषा शैली सपाट बयानी की है, जो सीधे बोलने व पाठकों पर प्रभाव डालने की है। इनमें न कोई काव्याभूषण है न अलंकार–छंद। ये सीधे पाठकों को संबोधित करती है। प्रथम पुरुष में बयानी देने के कारण कई बार ये दैनंदिन संभाषण जैसा दिल को छूता है।

5.9.1. गद्य पद्य समन्वय

काल विकास को देखा जाय तो समकालीन समय की विविधताएँ किसी भी पाठक को चकैने वाली हैं। इस समय में आकर गद्य व पद्य का फासला खत्म हुआ और गद्य–पद्य समन्वय या मिलन में भी साहित्यिक रचनाएँ सामने आई। प्रयोगात्मकता के बल पर किए गए परीक्षणों एवं निरीक्षणों में स्त्री उत्थान के मुद्दे भी समाहित हुए।

यहाँ पर गद्य–पद्य का समन्वय का मतलब खास है। काव्यशब्दावली, शैली, अलंकार रूपक आदि के रूप में पुराने जमाने के प्रतिमानों तथा मानकों के आगे अटपटे, जुबानी या बाज़ारी शब्दों का प्रयोग, गद्य और पद्य, दोनों में बेबाकी से प्रयोग में आए। हिंदी में कविता करनेवाले लोग दुनियाभर के राष्ट्रों व प्रदेशों में हैं। अतः प्रदेशी शब्द, देशज संकल्पनाएँ आदि का भी उल्लेख समकालीन कविता के संदर्भ में उचित है।

5.9.2. शब्दावली चयन में स्त्रीत्व की पुष्टि

पुरुष कवियों या पुंस भाषा के संदर्भ में लिखी गई कवयित्रियों की कविता की भाषा की जाँच की तो कई विचार सामने आए। पुनरावृत्ति, बातूनी शैली, भावनात्मकता, काल्पनिकता, बगावती शैली, आत्मश्लाघा पंक्तियाँ, आत्मोद्‌घाटन आदि विशेषताएँ स्त्री कविताओं में खारिज नहीं की जा सकती हैं। पर, ये कोई सार्वजनिक नियम नहीं है। घरेलू जगह, चहारदिवारी की घुटन, सार्वजनिक जगहों की कमी आदि से नारी के शब्द एवं भाषा में 'आत्म' या 'स्वान्तसुख' अधिक प्रतिध्वनित होते हैं तो यह कोई बुरी बात नहीं है। अपनी दृष्टि और स्त्रीलिंग शब्दावली में नारी की भावना एवं संवेदना, सामाजिक एवं साहित्यिक जगत में अलग अनुभव का अंदाजा प्रदान करती थी। स्त्री की उपेक्षित दुनिया या घरेलू जगत में उपेक्षित रहनेवाली छिटपुट चीज़ें, रसोई के उपकरण आदि पर कवयित्रियों ने अलग ढंग में कविताएँ प्रस्तुत कीं। स्त्री और कविता, दोनों को पहचान देने का प्रयास कवयित्री के काव्य प्रयोगों में शरीक है।

मेरी अपनी कोई पहचान तक नहीं
अपने स्वामी से ही पहचान जाती हूँ मैं
जैसे पहचाने जाते हैं मवेशी और खेत।[1]

अबकी स्त्री अपनी दीनता के साथ संभावनाएँ भी पहचानती है। उसकी कविता बडबोलापन नहीं है। अपनी तुच्छता में भी वह सार्थक होना चाहती है और सार्थक जीने का प्रयास करती है।

---

1. ममता कालिया, खॉटी घरेलू औरत, पृ. 55

''मन के उद्‌गार
कविता में ढाल
जब मैं उन्मुक्त स्वर से गाती हूँ
तो सोचती हूँ–
कर्मठ स्वयंसेवकों को
संशय की छाया से मुक्ति दिला
देश भर नवचेतना लाने
अमन का वातावरण बनाने
अपनी तुच्छ भूमिका निभा पाए।''[1]

5.9.3. स्त्री अनुभव की अलग भाषा

घरेलू जगह में पलनेवाली स्त्री बाहरी सौन्दर्य को देखती नहीं है। उसे वही भाषा आती है जो उसके घरवालों ने उसे सिखाई है। मानसिक अनुकूलन की दशा उसकी स्थिति स्थिर रखती है।

नए ज़माने की स्त्री तथा कवयित्री की खासियत यह है कि वह जीवन संदर्भों पर खुलकर संदेह प्रकट करती है, अपने समाज के साथ व घर ज़माने को अभी परखती है। तभी वह पहचान पाती है कि,

जिस घर को मैं
अपनी प्रिय देवता का मंदिर मान
पहारती हूँ, सँवारती हूँ

---

1. शीला गुजराल, साध, धरती का आर्तनाद, पृ. 70

वह मेरे लिए

यंत्रण गृह और कारागार बन जाता है।[1]

समकालीन परिवार की स्त्री इतना जागरूक है कि वह अपनी भाषा को सुधार करने और उसे स्थापित करने के लिए तैयार होती है। नीलेश रघुवंशी ने मातृत्व की तैयारी करनेवाली स्त्री पर दस कविताएँ लिखी हैं। अनामिका आदि की कविताओं में आर्तव, प्रसूति तथा स्त्री की दूसरी जैविक स्थितियों का बखान है। इन विषयों की उपस्थिति कविता में स्त्रीत्व की जैविक खासियतों को नए सिरे से देखने की प्रेरणा देती है। विशाल अर्थ में लिंग भेद की समस्याओं के समाधान ढूँढ़ने के लिए, वेश्या, विधवा, लिंग परिवर्तित और लिंगहीन जीवों पर भी कविता अपनी आवाज जोड रखती है। हर एक की दृष्टि, रास्ते व जीवन शैली अलग होने की बात वह मानती है।

स्त्री संबंधी मिथकों को पूरी तरह तोडने का काम समकालीन कविता ने कर दिखाया। सती, सावित्री, सीता व शीलावती के प्रयोग आजकल की कविताओं में पुराने अर्थों में नहीं हैं। कविताओं के शीर्षकों से यह स्पष्ट होता है कि इस तरह के प्रयोग विरुद्धोक्ति में प्रयुक्त हैं। अश्लील तथा बुरे अर्थवाले शब्दों पर पुराने मानक बदल गए। कालानुसार शब्द अपने संकेतार्थ बदलकर सामने आते हैं। आज की कवयित्री यह जानती है –

देह की अपनी एक भाषा होती है

पीडा की अपनी एक भाषा होती है।[2]

---

1. सादिगी डागा, शताब्दी की सरहद पर, पृ. 99
2. निर्मला गर्ग, कबाडी का तराजू, पृ. 11

5.10. स्त्री भाषा की माँग

दर असल इस पूरे घर का
किसी दूसरी भाषा में अनुवाद चाहती हूँ मैं
पर वह भाषा मुझे मिलेगी कहाँ
सिवा उस भाषा के
जो मेरे बच्चे बोलते हैं। [1]

स्त्री कविता अलग भाषा की कोशिश सामने रखती है। पर वह वर्तमान या मौजूदा भाषा व्यवस्था से अलग होने की चाहत नहीं करती है। उसका तर्क यह है कि अलग अनुभव लिखने के लिए खास भाषा की ज़रूरत है, जिससे जागृति का संकेत मिलना चाहिए। विरुद्धोक्तियों, उपहासों तथा विरोधों में वह अर्थ परिवर्तन चाहती है। उसे पता है कि वही भाषा उसके शाक्तीकरण की परिचायक हो सकती है, जो उस पर व्यंग्य न छेडे, उसकी पतिता होने की गवाही न दे। शंका नहीं कि भाषा के संदर्भ में भी, स्त्री के साथ देशज भाषा के सबलीकरण की माँग है। निजी खासियतें छोडे बिना, ज़मीनी भाषा और जुबानी शब्दों में कविता करने की हिम्मत एवं क्षमता आज की कवयित्रियों में है। यही बात उन्हें आगे बढाने की प्रेरणा देती है।

कोई चेहरा
कोई अच्छी किताब
खूब स्वाद से
देर तक पढ़ने के बाद

---

1. अनामिका, अनुष्टुप, पृ. 84

और ही तरह की लगने लगते हैं दुनिया
और ही तरह का हो जाता है। [1]

अच्छाई–बुराई, पक्ष–विपक्ष, सकारात्मक–नकारात्मक बातों की पहचान करनेवाली सभी जगत् स्त्री कविता में आता जाता है। स्त्रीत्व का जीवन और जीवनाभिव्यक्ति को कविता आत्मजागृति में प्रस्तुति करती है। ऐसी प्रस्तुतियाँ समकालीन परिसर में भी उपलब्ध हैं। धीरे–धीरे चयनित जीवन एवं चाही अभिव्यक्ति को हासिल करनेवाली कविता जागृत राष्ट्र, प्रांत तथा देश निर्माण में योगदान देनेवाली भी है। यह मानना उचित होगा कि स्त्रीपक्षीय भाषासृजन में कवयित्रियों के साथ कवियों का भी योगदान है। सभी साहित्यिक विधाएँ इस बात पर ध्यान रखती हैं कि बदलते समय में नारी के पक्ष में बात करें, कम से कम समान हैसियत में पेश आएँ। स्त्री जागरण के उपलक्ष्य में यह भाषा विकास कम महत्वपूर्ण नहीं है।

---

1. अनामिका, बीजाक्षर, पृ. 51